डॉ. बिभा कुमारी
हिंदी विभाग
विश्वेश्वर सिंह जनता महाविद्यालय, राजनगर
ललित नारायण मिथिला विश्विद्यालय, दरभंगा
बीए हिंदी प्रतिष्ठा, तृतीय वर्ष, पत्र – अष्टम

रस सम्प्रदाय और उसके सिद्धांत

रस सम्प्रदाय – रस सम्प्रदाय के आचार्यों ने रस को काव्य का सर्वस्व माना है। रस सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य भरत मुनि हैं। इनके काल का प्रामाणिक निर्णय नहीं लिया जा सका है। विद्वानों ने ईसापूर्व तीसरी शती से ईस्वी की दूसरी शती के मध्य इनके समय का अनुमान लगाया है। भरत का ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' नाट्य समेत सभी ललित कलाओं का आदिग्रंथ माना जाता है।
रस के विषय में सबसे पहला विवेचन भरत के नाट्यशास्त्र में ही मिलता है। यद्यपि भरत से पूर्व सदाशिव, ब्रम्ह, तंडु, नंदिकेश्वर, वासुकि, नारद, भरतवृद्ध आदि रस की चर्चा कर चुके थे, परंतु इनकी रचनाएँ प्राप्त नहीं हुई हैं अतः भरत को ही रस – सम्प्रदाय का आदि आचार्य स्वीकार किया जाता है।
भरत ने रस को नाटक का अनिवार्य तत्व कहा है –
"नहिरसादृते कश्चिदर्थ प्रवर्तते"

भरत ने रस को आस्वाद्य पदार्थ कहा है –

"जिस प्रकार नाना व्यंजनों, औषधियों और द्रव्यों के संयोग से षटरस उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार कवि हृदयगत स्थायी भाव विभिन्न प्रकार के भावों अर्थात् विभावादि के रूप को प्राप्त होने पर रसत्व को प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार नाना व्यंजनों, द्रव्यों से सुसंस्कृत अन्न का भोग करते हुए व्यक्ति हर्ष का अनुभव करता है उसी प्रकार नाट्य रस से भी हर्ष आदि की सिध्दि होती है।"

रस – निष्पत्ति के संबंध में भरत के दो प्रसिद्ध सूत्र हैं –

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः"

तथा

"न भावहीनोस्ति रसः"

अनेक आचार्यों ने भरत के रससूत्र की व्याख्या की है। प्रमुख व्याख्याता अचार्यों के नाम हैं –

लोल्लट, शंकुक, भट्टनायक और अभिनवगुप्त।

सभी व्याख्याताओं ने रससूत्र की अलग – अलग व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं।

लोल्लट रस की स्थिति मूल – पात्र में मानते हैं। उनका मानना है कि नट – नटी रंगमंच पर उस मूलपात्र में स्थित रस का अनुकरण करते हैं।

आचार्य शंकुक का मानना है कि रस मूल पात्र में स्थित नहीं होता है। इस प्रकार वे लोल्लट के कथन मूल पात्र में रस की स्थिति का खंडन करते हैं। आचार्य शंकुक रंगमंच पर नट – नटी द्वारा मूल पात्रों के स्थायी भाव के अनुकरण को रस कहा, सहृदय जिसका अनुमान करते हैं।

आचार्य भट्टनायक इन दोनों अचार्यों से भिन्न मत प्रकट करते हैं। वे मूल पात्र अथवा रंगमंच के नट – नटी में रस की स्थिति को नहीं मानते हैं बल्कि नाटक और काव्य के भोक्ता सहृदय के वासनाजन्य स्थायी भावों की कल्पनात्मक प्रतीति को रस कहते हैं। सहृदय इसी रस का भोग करता है।

आचार्य अभिनवगुप्त रसदशा और रसभोग के अंतर को अस्वीकार करते हैं। वे सहृदयनिष्ठ भाव की सुखात्मक प्रतीति को रस कहते हैं। परवर्ती रसवादी आचार्यों ने अभिनवगुप्त की व्याख्या को ही स्वीकार किया। भरत ने नाट्य के संदर्भ में ही रस का विवेचन किया था, परवर्ती आचार्यों ने काव्य के संदर्भ में रस का विवेचन किया। आचार्य विश्वनाथ ने काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है –

“वाक्यं रसात्मकम् काव्यम्”

काव्यशास्त्र में रस का अत्यधिक महत्व है। रसवादी अचार्यों ने तो रस की महत्ता मानी ही है, अन्य संप्रदायों के अचार्यों ने भी रस की महत्ता स्वीकार की है। सभी सम्प्रदाय के अचार्यों ने अपने सम्प्रदाय में किसी न किसी रूप में रस को स्थान दिया है और उसके महत्व को समझाने का प्रयास किया है।